Journal of Social Issues and Development (JSID)
(Himalayan Ecological Research Institute for Training and Grassroots Enhancement (HERITAGE)
ISSN: 2583-6994 (Vol. 3 & 4)
Special Combined Issue (September 2025 — April 2026. pp. 195-199)

औपनिवेशिक उत्तराखण्ड में शिक्षा प्रसार के सामुदायिक प्रयत्न के सन्दर्भः श्री सदानन्द कुकरेती (1886–1937) का योगदान

प्रशान्त भट्ट*

भारतीय जीवन दर्शन में शिक्षा को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। शिक्षा वैयक्तिक सामाजिक और राष्ट्रीय प्रगति के लिए ही नहीं अपितु सभ्यता और संस्कृति के विकास की प्रक्रिया के लिए भी अनिवार्य है। शिक्षा मानव विकास का एक महत्वपूर्ण घटक है, जो कि शिक्षित होने के साथ ही रोजगार और आय में वृद्धि, जनमत में वृद्धि, सामाजिक दोषों का परिष्कार तथा सशक्तीकरण व सामाजिक न्याय का वाहक बनती है। इसी कारण शिक्षा को क्षमताओं में अभिवृद्धि, स्वतंत्रता का विस्तार तथा तमाम तरह के शोषण व भेदभाव के प्रतिकार करने का उपकरण माना गया तथा मानव अधिकारों में सम्मिलित किया जाता है। यह तो सर्वमान्य तथ्य है कि किसी राष्ट्र का आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक विकास उस देश की शिक्षा पर निर्भर करता है। यदि उस देश की शिक्षा नीति गुणवत्तापूर्वक है तो देश निरंतर विकास करता है, किन्तु यदि उस देश की शिक्षा नीति त्रुटिपूर्ण होगी तो देश का विकास अवरूद्ध हो जाएगा। शिक्षा से ही व्यक्ति का व्यक्तित्व निखरता है सभ्यता का विकास होता है, राष्ट्र की संस्कृति और अधिक सम्पन्न होती है, विज्ञान का क्षेत्र प्रगति करता है तथा मानव विकास के उत्थान का मार्ग प्रशस्त करता है।

शिक्षा मानव जीवन की आधारभूत आवश्यकता है। शिक्षा को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचाने के लिए संस्थाओं की आवश्यकता होती है, इन संस्थाओं की दशा कार्य प्रणाली उस समय की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक जिजिविषा पर निर्भर करती है। भारतीय

* उप सचिव, उत्तराखंड लोक सेवा आयोग, हरिद्वार।

शासकों ने शिक्षा की जिम्मेदारी नहीं ली और न ही जनता की शिक्षा के लिए कोई व्यापक प्रयत्न ही किए थे। शासन की भूमिका वित्तीय सहायता प्रदान करने तक ही सीमित थी जो धार्मिक आधारों पर ही होती थी। औपचारिक शिक्षा, सरकारी कर्मचारी, व्यापारी, सम्पन्न जमींदार के लिए ही थी एवं विशाल जन समुदाय के लिए औपचारिक शिक्षा पद्धति का अभाव था। विशाल जन समुदाय के लिए मंदिर, मस्जिद, घरों में शिक्षा प्रदान की जाती थी। यहां प्रदान की जाने वाली शिक्षा औपचारिक शिक्षा नहीं थी वरन् लोगों को अपने व्यवसाय से संबंधित एवं परम्परागत संस्कृति को बनाये रखने की वाहक भी थी।

उत्तराखण्ड में राज्य के कर्तव्यों में शिक्षा सम्मिलित न होने के कारण राज्यों की ओर से कोई व्यवस्था नहीं हुई अपितु शिक्षा हेतु कुछ निजी व्यवस्थाएं प्रचलित थी। शेष भारत के समान ही कुछ शिक्षक अपने घर पर ही शिक्षा प्रदान करते थे, वे ज्योतिष, कर्मकाण्ड, आयुर्वेद, हिन्दी संस्कृत आदि की शिक्षा देते थे। ये सेवाएं निःशुल्क होती थी, जिनको गांवों द्वारा पोषित व संरक्षित किया जाता था। इस तरह के उदाहरणों में श्रीनगर के निकट पोखरी गांव के बहुगुणा और श्रीनगर के नौटियाल व्याकरण तथा काव्यशास्त्र का शिक्षण सम्बन्धी कार्य करते थे।[1]

ब्रिटिश शासन के अभ्युदय (सन् 1815) से पूर्व गढ़नरेशों (सन् 1517—1803 ई0) तथा गोरखा राज्य (सन् 1803—1815 ई0) में राज्य की तरफ से शिक्षा हेतु कोई व्यवस्थाऐं नहीं की गयी। ब्रिटिश शासन के प्रारम्भिक वर्षों 1815 से 1840 ई0 तक सार्वजनिक शिक्षा की कोई प्रणाली प्रारम्भ नहीं की गयी। बैकेट (1840—1864) द्वारा शासकीय स्तर पर विद्यालय खोलने का निर्णय लिया गया।[2] बैकेट का शिक्षा के सन्दर्भ में यह महत्वपूर्ण कदम था। यह भी उल्लेखनीय है कि शिक्षा के लिए कोई बजट नहीं था। अतः भूराजस्व के साथ शिक्षा के लिए अलग से देय लिए जाने की व्यवस्था से विद्यालय प्रारम्भ हुए। सन् 1840 में कम्पनी सरकार द्वारा की गयी इस निर्णण से बिना शुल्क के श्रीनगर में पहला विद्यालय स्थापित किया गया। इस विद्यालय का मासिक व्यय 5 रूपया था, जो कि लावारिस सम्पत्ति/फण्ड से दी जाती थी। कलकत्ता एजुकेशन सोसाइटी की अनुमति से कुमांयू के कमिश्नर ने कुमायूं में शिक्षा के विकास पर 20 रूपए व गढ़वाल में 14 रूपए खर्च किए।[3]

शासकीय स्तर के अतिरिक्त स्थानीय स्तर पर शिक्षा हेतु प्रयास किये गये हैं। सन् 1850 ई0 में गढ़वाल व कुमांयू में पाठशालाओं की संख्या लगभग 121 थी। यह पाठशालाऐं अध्यापकों द्वारा अपने घरों में चलायी जाती थी। इनमें 54 विद्यालयों में शिक्षकों द्वारा निःशुल्क शिक्षा दी जाती थी तथा 67 विद्यालयों में शिक्षक 8 से 9 रूपये प्रतिमाह की आय पर शिक्षण कार्य हेतु नियुक्त किए गए थे।

स्थानीय जनता द्वारा किए प्रयासों इसमें श्री सदानन्द कुकरेती, श्री घनानन्द खण्डूरी का प्रयास अविस्मरणीय है। इसके साथ ही ईसाई मिशनरियों ने शिक्षा के प्रसार में उल्लेखनीय

कार्य किया। घनानन्द खण्डूरी ने मसूरी में हाईस्कूल की स्थापना की, इसके अतिरिक्त चन्द्रबल्लभ ट्रस्ट की स्थापना की जो निर्धन छात्रों की सहायता करता था। सदानन्द कुकरेती ने स्थानीय जनता से चन्दा व दान प्राप्त कर सिलोगी में मिडिल स्कूल स्थापित किया। उक्त के अतिरिक्त ब्रिटिश शासन में शिक्षा के प्रसार के सामुदायिक प्रयत्नों में श्रीमती महादेवी (देहरादून), डॉ0 पातीराम परमार (कर्णप्रयाग), गिरजाशंकर ध्यानी (देवप्रयाग), सदानन्द भारद्वाज (अघारिया खाल), सदानन्द शास्त्री (तिमली), ईश्वरी दत्त ध्यानी (नैनीडांडा) का भी योगदान महत्वपूर्ण था।

श्री सदानन्द कुकरेती का जन्म 07 मार्च, सन् 1886 ई0 को जिला गढ़वाल की ढांगू पट्टी के गुईल गाँव में हुआ था। इनके पिता श्री बालादत्त कुकरेती पी.डब्ल्यू.डी. में कर्मचारी थे। गांव के नजदीक बड़ेथ स्कूल में प्रारम्भिक शिक्षा ली, उसके बाद मिशन हाईस्कूल चोपड़ा में दसवीं कक्षा तक अध्ययन किया। शिक्षा ग्रहण के पश्चात पौड़ी के पी.डब्बल्यू.डी. ऑफिस में क्लर्क हो गये। नौकरी के साथ–साथ स्वदेशी का प्रचार करना शुरु किया। वह बंगभंग–आंदोलन के दौरान चीनी तक का बहिष्कार कर दिया। सरकारी नौकरी एवं स्वदेशी जागरण की प्रवृत्ति विरोधाभासी थी जो अधिक दिन तक एक साथ नहीं चल सकती थी। पिता की मृत्यु के बाद नौकरी छोड़ दी। श्री सदानन्द ने नौकरी से त्यागपत्र के पश्चात पौड़ी से मासिक विशाल कीर्ति का प्रकाशन शुरू किया। फरवरी, सन् 1913 ई0 से दिसम्बर, सन् 1915 ई0 तक पत्रिका के कई अंक निकाले।

पत्रिका 'विशाल कीर्ति' में पौड़ी के आस–पास की घटनाओं को चुटीली व शैली में प्रस्तुत किया जाता था। लच्छेदार व चटपटी लेखों में 'गढ़वाली ठाट' की चाशनी भी चटाया करते थे। उस 'ठाट' में अधिकांशतया प्रहसन–पूर्ण चुटकुलों व गद्य–पद्य की बहार रहती थी; उनकी 'घरेलू मनोरंजकता' आम जन की पसंद बन गयी थी। इन चुटकुलों में तत्कालीन शासन की कमियों, अधिकारियों की करतूतों पर कटाक्ष करते थे।

यह उत्तराखण्ड में अधिकारियों की एकतंत्रता का जमाना था; उनके विरुद्ध गुप्त स्थानों में भी विचार प्रकट करना खतरनाक था। ऐसी परिस्थिति में इन्होंने द्विअर्थक भाषा का आश्रय लिया। इन लेखों में अधिकारियों की काली करतूतों का सारा किस्सा सुना देते, परन्तु किसी का भी नाम न देते, इसलिये मुकदमा चलने की नौबत नहीं आ पाती थी। उस शस्त्र के द्वारा इन्होंने कर्मचारियों की खुली खजाने डकैती का खुले आम पर्दा फाश किया। इन्हें कई प्रकार के प्रलोभन दिये गये और भय दिखाये गये; पर ये अपने मार्ग से विचलित नहीं हुए। हर महीने जब 'विशाल कीर्ति' के निकलने का समय आता, तब सब लोग यह प्रतीक्षा करते थे कि इस बार किस अधिकारी की शामत आई है? इसी कारण अधिकारियों में खलबली मच गई। इसी बीच सदानन्द कुकरेती ने कमजोर आर्थिक स्थिति के कारण पत्रिका विशाल कीर्ति के प्रकाशन से अपने आपको पृथक कर लिया।

इसी दौरान श्री जोध सिंह नेगी, टिहरी–गढ़वाल राज्य के बंदोबस्ती अफसर नियुक्त हुये। श्री नेगी ने सदानन्द कुकरेती को अपने साथ रीडर पद पर नियुक्त किया। ईसाई मिशनरियों ने चेलूसैंण में मिशन स्कूल खोला, जिसमें चेलूसैंण के कुछ विद्यार्थियों को ईसाई बनाने के प्रश्न को लेकर गड़बड़ पैदा हो गई और हिन्दू जनता का विरोध उठ खड़ा हुआ। मिशनरियों ने स्कूलों की पाठ्यचर्या व पाठ्यपुस्तकें तैयार की तथा उनका भी प्रकाशन किया। वास्तव में यह ईसाई धर्म प्रचार था। परन्तु शिक्षा की आढ़ में यह कार्य द्रुतगति से चलाया जा सकता था।[4] अतः मिशन स्कूल के विरोध में सन् 1925 ई0 में वहीं पर 'हिंदू पाठशाला' की स्थापना कर दी गई और श्री कुकरेती को अध्यापक नियुक्त किया गया। परन्तु कुछ समय में ही संस्था में मतभेद हो गया, जिसकी परिणीति एक दिन कतिपय अध्यापकों और छात्रों को लेकर चैलूसैंण से चल दिये तथा सिलोगी पहुँच कर अलग पाठशाला की स्थापना की गयी।

अपने जीवन के अन्तिम ग्यारह वर्ष सिलोगी एक आदर्श शिक्षण–संस्था स्थापित करने में लगाये। उसके लिये इन्होंने अपना पूरा समय और सारी शक्ति लगा दी। इस उद्देश्य से इन्होंने अपनी आवश्यकतायें बिल्कुल कम कर दीं। कंधे पर झोला और हाथ का डण्डा ही इनके मित्र, सहायक और विश्वासपात्र थे।

जिन्दगी का हर क्षण, दर सोच स्कूल की स्थापना तक सीमित हो गया। कभी खाना मिलता, कभी नहीं। कई बारे तो सत्तू–च्यूड़ा पर ही कई निर्वाह हो जाता और कभी–कभी तो सफर में रास्ते किनारे की खड़ी फसल से कच्चा अनाज तोड़कर पेट भर लेते। कहीं चाय पीने को दी जाती, तो उसके बदले स्कूल–कोष के लिये एक आना रखवा लेते। बच्चों के साथ खेलने का इन्हें बहुत शौक था; अक्सर मुँह पर उंगलियां लगाकर जानवरों की अद्भुत बोलियां सुनाते थे। जब लोग और अनुरोध करते तो कहते कि "सिलोगी–स्कूल के लिये पैसे दो, तो सुनाऊं।" शिक्षा समाज का एक उपांग है, स्वतंत्र कारक नहीं। अतः भारत के सभी बच्चों के लिए उम्दा गुणवत्ता वाली शिक्षा उपलब्ध करवाने का संघर्ष अभिन्न रूप से गरीबी, कुपोषण एवं बीमारियों के खिलाफ चलने वाले संघर्षों से जुड़ा रहता है। इस संबंध में यह स्वीकारना होगा कि विषमता निर्धनीकरण और शोषण जैसे बुनियादी सामाजिक कारकों की अवहेलना करके हम कभी सभ्य और शांतिमय समाज की कल्पना नहीं कर सकते।[5]

सामाजिक कार्यों हेतु श्री सदानन्द कुकरेती को सरकार से एक प्रशंसा–पत्र मिला, परन्तु सरकारी आर्थिक सहायता नहीं मिली। अथक प्रयास के बाद भी आठवीं कक्षा की भी मान्यता पाठशाला को नहीं मिल पाई। किसी शिक्षण संस्था को चलाने में शिक्षा की गुणवत्ता के साथ आर्थिक सामाजिक पहलू भी महत्वपूर्ण हो जाते हैं, किसी आम आदमी के लिए यह सोच पाना भी कठिन था, शासन–प्रशासन की मदद के बगैर चल पाना मुश्किल था। आर्थिक स्रोत केवल आसपास की जनता ही थी। यह भी महत्वपूर्ण था कि आमजन भी इतनी धनाड्य नहीं थी, जो लगातार मदद कर सकती। उधर यद्यपि निकटवर्ती जनता ने प्रारम्भ में उत्साह–पूर्वक

सहायता दी, तथापि बाद में उसका उत्साह कायम नहीं रह पाया। हर समय पाठशाला की चिंता और रोज ग्वील–बड़ेथ की किसी ने स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डाला दि0 18 जुलाई, 1937 ई0 को इन्होंने इस असार संसार से विदाई ली। इस असाधारण दृष्टिकोण को जमीन में उतारने के लिए सदानन्द कुकरेती को आमजन ने ''**सिलोगी का सन्त**'' की पदवी दी।

औपनिवेशिक शासन ने यद्यपि गढ़वाल की अर्थव्यवस्था की मध्ययुगीन स्थैतिकता को तोड़ने का कार्य किया, लेकिन किसी नए विकल्प की सृष्टि न कर पाने से यह स्थिति कष्टप्रद व त्रासदीय बनी रही। इस विषम स्थिति में संसाधनों का विकास करना एक दिवास्वप्न था। जिन भी महानुभावों ने प्रयास किये वह तत्कालीन आवश्यकताओं के दृष्टिगत तो न्यून ही थे, परन्तु सोच को धरातल पर लाने के लिए उन्होंने स्वयं को होम किया।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

श्री सदानन्द कुकरेती का जीवन सन्दर्भ – ''गढ़वाल की दिवंगत विभूतियां'' डॉ0 भक्तदर्शन (द्वितीय संस्करण, 1980 से संदर्भित।

1. डबराल, शिव प्रसाद, उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग–7, पृ0 431–432।
2. बेकेट, जे0बी0 ओ0(1866), रिर्पोट ऑन सेटेलमेन्ट ऑपरेशन इन द गढ़वाल डिस्ट्रिक्ट फ्रॉम 1856 टू 1864, गवर्नमेन्ट प्रेस, इलाहाबाद, पृष्ठ 525।
3. एटकिंसन, ई0टी0, दि हिमालयन गजेटियर, 1886, ग्रन्थ 3, भाग–2, पृष्ठ 525।
4. भट्ट प्रशान्त, स्वामी रामतीर्थ एवं औपनिवेशिक शिक्षा नीति, म्कनबंजपवदंस त्मेमंतबी श्रवनतदंसए टवस 13ए 2011ए उत्तराखण्ड शोध संस्थान, कोट्द्वार।
5. सदगोपालन अनिल–शिक्षा में बदलाव का सवाल–सामाजिक अनुभवों से नीति तक 2000, गंथ शिल्पी प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।